विकास – एक नज़र यह भी

वल्लाह, क्या गलती है!

● लुईस थॉमस

तरजुमा – मनोहर नोतानी

प्रकृति की अब तक की सबसे शानदार कामयाबी बिलाशक डी. एन. ए. अणु का निर्माण रहा। और यह अणु तो आज से तकरीबन तीन सौ करोड़ साल पहले ठंडाते इस ग्रह (हमारी अपनी धरती) पर मौजूद उस शोरबे में से उभरने वाली पहली कोशिका पर अंकित था; जिस शोरबे में आगे आने वाला जीवन हिलोरें ले रहा था। सीधी-सादी भाषा में कहें तो धरती पर मौजूद तमाम कोशिकाओं के ज़रिए गुंथा आज का सारा-का-सारा डी.एन.ए. उस पहले-पहले अणु का विस्तृत व परिष्कृत रूप ही है। यानी बुनियादी हिसाब से हम पक्के तौर पर यह नहीं कह सकते कि हमने तरक्की की है। वजह? प्राकृतिक जीवन में बढ़ोतरी और दोहराव के तरीकों में मूलतः कोई बदलाव आया नहीं है। लेकिन और तमाम हिसाबों से हमने तरक्की ज़रूर की है।

हालांकि विकास (evolution) के संदर्भ में तरक्की की बात आज के माहौल में कुछ बेमानी-सी लगती है। खासकर अगर 'तरक्की' लफ्ज़ के इस्तेमाल से आपका इशारा किसी तरह के 'सुधार' की तरफ हो; सुधार यानी एक ऐसा 'मूल्य' जो साइंस के दायरे से बाहर की चीज़ है। लेकिन इससे बेहतर लफ्ज़ भी तो नहीं मिल रहा है! आखिर हम समुद्री शैवालीय टेकरियों से बनी उस दुनिया



से तो बहुत दूर निकल आए हैं, जिनके बीच एक रंगहीन व फीकी-सी ज़िंदगी गुज़ार रहा था वह जीवन तंत्र, जिसमें आदिम किस्म की जैविकीय कोशिका के अलावा कुछ न था।

फिर रीढ़दारियों के दिमाग के अंदर करीने से सजी तंत्रिका कोशिकाओं का जाल 'सुधार' के अलावा और क्या कहला सकता है? उस पुरातन मूल अणु से चलते हुए हम कहीं आगे निकल आए हैं।

हां, यह तो तय है कि मानवीय बुद्धिमत्ता से हम यह सफर तय न कर पाते। फिर चाहे उसके लिए किसी दूसरे सौर-मंडल से तमाम जीवशास्त्री, तमाम उपकरण वगैरह क्यों न आयातित कर लिए जाते। यह तो अच्छा हुआ कि हमारे पास ऐसे वैज्ञानिक हैं जो विकास की हर पायदान से गुज़रे हैं। निश्चय ही इस कारण हंम डी.एन.ए. के बारे में काफी कुछ जानते हैं। लेकिन खुदा-न-ख्वास्ता शुरू-शुरू में ही अगर हमारे मौजूदा दिमाग जैसे ही किसी दिमाग को इस समस्या से जूझना पड़ता कि किस तरह से अपने आप को दोहरा सकने वाला एक अणु डिज़ाइन किया जाए तो यकीनन हम कभी कामयाब न होते! हम एक घनघोर गलती करते – वह यह कि हमारे द्वारा बनाया गया अणु एकदम 'परफेक्ट' होता, बिना किसी नुक्स के! और एक समय के बाद हम उसकी एकदम त्रुटिहीन प्रतिकृतियां बनाने के लिए माकूल न्यूक्लिओटाइड्स, एंज़ाइम वगैरह जुटा लेते। लेकिन जैसी कि सोच के मामले में फितरत है; हमारे खयाले-शरीफ में यह बात कभी न समाती कि जो भी चीज़ बननी है उसमें गलती, भूल करने की काबिलियत तो हो! जबकि ज़रा-ज़रा सी गड़बड़ कर देना ही डी. एन. ए. की असली जादूगरी है। बिना इस खासियत के हम आज भी होते वही – अनऑक्सी-बैक्टीरिया* और होता संगीत से नावाकिफ एक माहौल। हमें आज के मुकाम तक लाने वाले हर म्यूटेशन, हर बदलाव को अगर हम एक-एक करके देखें तो पाएंगे कि वे महज़ इत्तफाक थे; यूं ही-सी घटी एक दुर्घटना, जो तयशुदा न थी। लेकिन बदलावों का होना कोई हादसा न था। शुरूआत से ही डी. एन. ए. का अणु छोटी-छोटी भूलें करने के फरमान से बंधा था।

और अगर यह सब हमारे मुताबिक हो रहा होता तो यकीन मानिए हमने कोई रास्ता खोज लिया होता इसे ठीक करने के लिए। नतीजतन विकास की गाड़ी के पहिए कब के जाम हो चुके होते। ज़रा कल्पना करें! प्रोकैरिओट्स** की हूबहू बेनुक्स नकलें बनाने में जुटे मानव-वैज्ञानिक और उनकी वह हकबकाहट जब अचानक उनके सामने आ खड़ी हों केंद्रकधारी कोशिकाएं। फिर तो हंगामा हो जाता। कमीशन के कमीशन बैठाए जाते – जांच के लिए। कि चहुं ओर ट्रिलोबाइट*** कैसे आ धमके? बड़े पैमाने पर बर्खास्तगियों का आलम होता! कहते



तो हैं – गलती करना इन्सानी फितरत है! लेकिन हमें यह ख्याल कुछ ज़्यादा भाता नहीं लगता। और फिर यह यकीन करना तो और भी मुश्किल है कि जैविकी का आधार ही गलती करना है। हम अपनी ही बात पर अड़े रहते हैं और किसी भी तरह के बदलाव से अपने आप को महफूज़ रखने की कोशिश करते हैं। लेकिन असल बात तो यह है कि हम शुद्धत: संयोग से ही यहां आ पहुंचे हैं या यूं कहें कि भूलवश! किसी मुकाम पर न्यूक्लिओ-टाइड्स की श्रृंखला में सेंध पड़ी, नए न्यूक्लिओटाइड्स उसमें समाए, फिर शायद कुछ वायरस ही घुस आए अपने साथ जीनोम के टुकड़े लिए!

इसके बाद सूरज या अंतरिक्ष से पहुंचे विकिरण ने विकास की सीढ़ी चढ़ते उस वक्त के अणु में कुछ बारीक-सी दरारें पैदा कीं। इन दरारों से जो शुरूआत हुई उसी से एक लम्बे अर्से बाद झांक सका मानवत्व।

पर शायद यूं भी कि इस अणु की बुनियादी ढुलमुलाहट के कारण यह तो होना ही था। क्योंकि अगर आपके पास ऐसा एक मेकेनिज़्म हो जो अपने जीने का अंदाज़ बदलता रहे; और अगर नए-नए उभरने वाले उसके विभिन्न स्वरूप आपस में ज़रूरी तालमेल बनाए रखें (जैसा कि वे यूं ही करते रहते हैं); और अगर प्रजाति के लिए किसी भी नई काबिलियत से लैस, एक नए नवेले जीन के चुने जाने की संभावना प्रबल हो; और तिस पर अगर आपके पास समय-ही-समय हो तो शायद ऐसी एक जीवन व्यवस्था बनना तय ही है जिसमें पहले तो दिमाग और आगे चलकर चेतनता का पुट होगा।

और अंत में लगता तो यही है कि विकास की कुलांचों के लिए जैविकी को अपनी खातिर 'भूल' या 'गलती' लफ्ज़ की जगह कोई ऐसा शब्द ढूंढना होगा जो उसकी क्रियाशीलता का प्रतिनिधित्व सही-सही मायनों में कर सके।

लुइस थॉमस – पेशे से डॉक्टर। न्यूयार्क में जन्मे और अमेरिका के कई जाने-माने अस्पतालों और विश्वविद्यालयों में शोधकार्य किया और चिकित्सा प्रशासन भी संभाला। उनके पेशे से उभरे अनुभवों पर निबंधों के कई संकलन किताबों के रूप में प्रकाशित हुए।
उपरोक्त लेख उनकी पुस्तक 'मेड्युसा एंड द स्नेल' (1979) से अनूदित है।
मनोहर नोतानी – एकलव्य की विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर सेवा 'स्रोत' से संबद्ध।

* वे बैक्टीरिया जिन्हें ज़िंदा रहने के लिए ऑक्सीजन की ज़रूरत नहीं होती।

** ऐसे एक कोशीय जीव जिनकी कोशिकाओं में केंद्रक मौजूद नहीं होता। बैक्टीरिया भी इसी श्रेणी में आते हैं।

*** जीवाश्मों (फॉसिल्स) से पता चलता है कि लगभग पचपन करोड़ साल पहले इस धरती पर अचानक खूब सारे बहुकोशीय समुद्री जीव पैदा हो गए। इनमें से एक थे ट्रिलोबाइट। फिर लगभग 22 करोड़ साल पहले ट्रिलोबाइट विलुप्त हो गए।